भारतीय राजनीति की बदलती प्रवृत्ति

डॉ पप्पू राम कोली
व्याख्याता राजनीति वज्ञान ,
राजकीय स्नातकोत्तर महा वद्यालय , प्रतापगढ़ (राजस्थान) !

सार
'लोकतांत्रिक व्यवस्था क सफलता राजनीतिक दलों पर ही निर्भर करती हैं। राजनीतिक दलों के माध्यम से ही लोकतंत्र में सरकारों का गठन व संचालन कया जाता हैं और जन इच्छाओं को पूर्ण कया जाता हैं। वर्तमान समय में बदलती परिस्थितियों में राजनीतिक दलों क नवीन प्रवृत्तियाँ देखी गई हैं। इन उभरती प्रवृत्तियों ने सरकारों की कार्य प्रणाली को प्रभा वत कया हैं। जिसका प्रभाव सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था पर देखा जा सकता हैं।
मूल शब्दः प्रवृत्तियाँ, गठबंधन, न्यायिक-स क्रयता

प्रस्तावना

लोकतंत्रिक व्यवस्था को राजनीतिक दलों की बदलती प्रवृत्तियाँ व्यापक स्तर पर प्रभा वत करती हैं। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों ने संपूर्ण प्रशासन व्यवस्था को प्रभा वत कया हैं। सरकार के सभी अंगों की कार्यप्रणाली में परिवर्तन देखा गया हैं, यह परिवर्तन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में राजनीतिक दलों क उभरती प्रवृत्तियों से प्रभा वत रहीं हैं। इसी कारण आधुनिक समय में प्रशासन के सभी स्तरों पर राजनीतिक दलों की नवीन प्रवृत्तियों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता हैं। लोकतंत्र में राजनीतिक दलों का वशेष महत्त्व होता हैं। राजनीतिक दलों के अभाव में सफल लोकतंत्र क कल्पना भी नहीं क जा सकती हैं। दलीय व्यवस्था का प्रभाव संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर पड़ता हैं। यही कारण हैं कसी राष्ट्र के राजनैतिक दलों द्वारा अपनायी गई नीतियों और कार्यप्रणाली का प्रभाव वहाँ क शासन-व्यवस्था पर देखा जा सकता हैं। भारतीय शासन व्यवस्था पर भी राजनैतिक दलों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता हैं। भारतीय राजनीति के प्रारम्भिक समय में एक दलीय प्रणाली का प्रभाव बना रहा था। एक दलीय प्रणाली के कारण शासन व्यवस्था में संघीय प्रवृत्तियाँ छिपी रहती थी। प्रधानमंत्री व मंत्रिमंडल सम्पूर्ण शासन व्यवस्था व राजनीति पर छाए रहते थे परन्तु दलीय व्यवस्था में हुए परिवर्तनों के शासन व्यवस्था में प्रभावशाली बदलाव देखे गये थे।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में सं वधान लागू होने के चार दशकों तक अ खल भारतीय कांग्रेस के प्रभाव ही बना रहा था। एक दलीय वर्चस्व वाली कांग्रेस पार्टी ने शासन व राजनीति में संघीय पहलू को प्रायः दबा दिया था। प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् के प्रभाव में संसदीय शासन प्रणाली ही हावी रही। **1989** ई. के आम चुनावों के बाद लोकसभा में बहु-दलीय प्रणाली का स्पष्ट प्रभाव देखा गया था। बहु-दलीय प्रणाली के अंतर्गत ही राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन व अल्पमत की सरकारों का दौर प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार गठब

ंधन की राजनीति अस्तित्व में आने के कारण भारत में संघीय प्रवृत्तियों का अभूतपूर्व वकास हुआ हैं। इसके साथ ही राज्य स्तरीय सरकारों की स्वायत्तता में वृद् व देखी गई। जिसके चलते राज्य सरकारों क राजनैतिक और आ र्थक क्षेत्रों में भू मका पहले क अपेक्षा अ धक बढ. गई, जो एक महत्वपूर्ण राजनीतिक बदलाव था। दलीय राजनीति से प्रेरित होकर ही केन्द्र सरकारों के द्वारा राज्यों क राजनीति में हस्तक्षेप क प्रवृत्ति भी बढ. गई हैं। इस दृष्टी से सं वधान के अनुच्छेद **356** के दुरूपयोग को देखा जा सकता हैं। कन्तु गठबंधन सरकारों के काल में सं वधान के अनुच्छेद **356** के अन्तर्गत दूसरे दलों क राज्य सरकारों को असंवैधानिक तौर पर ध्वस्त कर देने की प्रवृति पर अंकुश लगा हैं। गठबंधन सरकारों में राष्ट्रपति प्रधानमंत्री एवं मंत्रिपरिषद क शक्तियों व कार्यकलाप का एक नया आयाम वक सत हुआ हैं। राष्ट्रपति क स्व ववेक शक्तियों के प्रयोग क संभावनाएँ भी बढ. गई हैं। इसके साथ ही प्रधानमंत्री की शक्तियों पर भी गठबंधन सरकार के घटक दलों का नियंत्रण स्था पत हो गया हैं।

इस व्यवस्था का एक दूसरा पहलू यह भी देखा गया हैं क मंत्रिमंडल की एकता तथा संसद के प्रति उत्तरदायित्व के सद्वांत में व्यवहारिक वखंडन आया हैं। कन्तु न्यायपा लका की शक्तियों तथा क्रयाशीलता में अभूतवपूर्व वस्तार हुआ हैं। इस प्रकार भारतीय दलीय प्रणाली क नवीन प्रवृत्तियों का सम्पूर्ण भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर प्रभाव देखा जा सकता हैं।

राष्ट्रपति क स क्रयता में वृद् व **1989** ई. के बाद बहु दलीय राजनीति के प्रभावी होने के कारण भारतीय राजनीति में गठबंधन सरकारों का नवीन युग शुरू हो गया था। बहु-दलीय युक्त गठबंधन सरकारों के काल में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और अन्यों की भू मका में परिवर्तन देखा गया। सर्वप्रथम इस समय क्षेत्रीय दलों की शक्ति में वृद् व हो गई, जिसके चलते प्रधानमंत्री पद की गरिमा और स्थिति में आं शक गरावट देखी गई कन्तु आधुनिक भारतीय राजनीति में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अत्य धक शक्तिशाली हो गया हैं तथा संवैधानिक प्रमुख रूप से राष्ट्रपति अब सम्पूर्ण राष्ट्र के रूप में सामने आया हैं। अतः वास्तव में राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति में राष्ट्रपति आपात काल की भी घोषणा कर सकता हैं। परवर्तित राजनीतिक सन्दर्भ में सं वधान के प्रावधानों के अनुरूप शासन के संचालन को सुनिश्चित करने के दायित्व की पूर्ति के लये उसी सं वधानिक शक्तियों को वास्त वक शक्तियों के रूप में प्रवृत करने की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती हैं।**1** **1989-1999** के काल में राष्ट्रपति ने गठबंधन व मली-जुली सरकारों की स्थिति के अंतर्गत मुख्य रूप से लोकसभा में बहुमत पर संदेह के सन्दर्भ में सरकारों के निर्माण और पतन में अहम् भू मका निभायी थी। इस प्रकार बदलती हुई भ ू मका के कारण जेम्स मैनर ने अपने प्र सद्व लेख ष्ज्ीम च्तमेपकमदबलष् में स्पष्ट करते हैं क -राष्ट्रपति का पद **1989** से अत्य धक महत्वपूर्ण बनता जा रहा हैं क्यों क वह अब सरकारों को बनाने के खेल का निर्णायककत्र्ता हैं। अब राष्ट्रपति यह निर्णय लेता हैं क वह प्रधानमंत्री की लोकसभा को भंग करने की सफारिश को मंजूरी दे या नहीं। इस तरह खं ड़त संसदों के युग में राष्ट्रपति का पुराना कार्य अब काफी जटिल, उलझनभरा और मुश्किल हो गया हैं।

भारत में राष्ट्रपति क बढ़ती भू मका का वश्लेषण करते हुए जेम्स मैनर ने वेंकटरमण **(1987-1992)**, शंकर दयाल शर्मा **(1992-1997)**, के आर नारायणन **(1997-2002)** की भू मका का परीक्षण कया। मैनर

बताते हैं क वेंकटरमण ने दृढ नहीं थे और के. आर. नारायणन वास्त वक रूप में दढ थे, जिसमें उनका व्यक्तित्व, पद में निहित शक्तियाँ और उस समय की परिस्थितियाँ तीनों चीजें महत्वपूर्ण थी। इस प्रकार राष्ट्रपति क स क्रयता और प्रभाव में वृद् व देखी गई हैं।

प्रधानमंत्री के प्रभाव एवं स्थिति का पतन

भारतीय राजनीति में एक दलीय वर्चस्व के काल में प्रधानमंत्री क पद एवं स्थिति महत्वपूर्ण बनी रही थी कन्तु जब राजनीतिक व्यवस्था में एक दलीय वर्चस्व के स्थान पर बहुदलीय गठबंधन क राजनीति का प्रारम्भ हुआ तब से प्रधानमंत्री के पद एवं स्थिति में पतन देखा गया हैं। जिससे प्रधानमंत्री के पर क गरिमा में कमी आई हैं। **1989-2014** तक सभी गठबंधन सरकारों के काल में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का योगदान अत्य धक रहा था। इसी कारण क्षेत्रीय राजनीतिक दलों ने केन्द्र सरकार के गठबंधन में शा मल होकर सरकार-निर्माण में मदद करते रहें हैं। इसी का प्रभाव रहा था क इन क्षेत्रीय राजनीतिक दलों को केन्द्रीय मंत्रीमण्डल में शा मल कया जाता था। इतना ही इन सहयोगी राजनीतिक दलों के मु खया राजनेताओं के अतिरिक्त करीबी राजनीतिज्ञ को भी मंत्रिमण्डल में स्थान दिया जाता था।

कभी-कभी अन्य संस्थाओं में भी प्रमुख के पद पर नियुक्ती दी जाती रहीं हैं। इसके साथ ही सहयोगी दलों के द्वारा केन्द्रीय सरकार पर दबाव बना कर अपनी माँगे भी मनवायी जाती रही ं हैं। इस प्रकार ये सहयोगी राजनेता मंत्रीमण्डल में रहते हुए भी अपने क्षेत्रीय संरक्षकों के प्रति जवाबदेह होते हैं न क मंत्रिमण्डल या प्रधानमंत्री के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इससे मंत्रिमण्डल का सामूहिक उत्तरदायित्व के सद्वांनत का भी हनन होता हैं। जो क संसदीय शासन प्रणाली के लए उ चत नहीं हैं। इस प्रकार क गठबंधन सरकारों में कई बार सहयोगी मंत्री प्रधानमंत्री के प्रति जवाबदेह न होकर क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के प्रति अ धक निर्भर रहते हैं।

इस प्रकार क गठबंधन सरकारों में कई बार मंत्रिमण्डल के द्वारा प्रधानमंत्री क इच्छा के वपरीत भी कार्य होते हैं, भले ही प्रधानमंत्री उससे सहमति नहीं रखता हों। अतः सरकार को बचाए रखने के लए बाहरी दबावों अथवा वशेष हितों की पूर्ति के कारण मंत्रिमण्डल के निर्णय प्रभा वत होते हैं। इसके साथ ही क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के द्वारा गठबंधन के नेताओं का निर्धारण भी कया जाता हैं। क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के द्वारा अपने समर्थन के आधार पर यह तय करते हैं क प्रधानमंत्री कसे बनाना हैं और कसे नहीं **?** गठबंधन में शा मल राजनीतिक दलों के द्वारा ऐसे व्यक्ति को अपना समर्थन दिया जाता हैं जो उन्हें पंसद हो ता क उनके हितों की पूर्ति राष्ट्रीय राजनीति में सहजता से क जा सकें। इन सभी कारणों के चलते प्रधानमंत्री क शक्ति, सत्ता, प्रभाव व स्थिति आदि में बहुदलीय गठबंधनयुक्त व्यवस्था में कमी आयी हैं। भारतीय राजनीति में **2014** में हुए निर्वाचनों में इस स्थिति में पुनः बदलाव आया इस निर्वाचन में पूर्ण बहुमत क प्राप्ति हुई। पूर्ण बहुमत सरकार के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी बनाये गये क्यों क उनका व्यक्तित्व व कार्यप्रणाली काफी सशक्त रही थी। नरेन्द्र मोदी के कार्यकाल में प्रधानमंत्री के पद एवं स्थिति में सुदृढता आई हैं।

राज्यपाल की भू मका में परिवर्तन होना

भारतीय राजव्यवस्था में राज्यपाल के पद का वशेष महत्त्व रहा हैं। भारतीय सं वधान में कये गये प्रावधानों के अनुसार राज्यपाल के द्वारा दोहरी भू मका का निर्वाह कया जाता हैं।

प्रथम- केन्द्र के एंजेट के रूप में।

द् वतीय- राज्य के प्रमुख के रूप में।

भारतीय प्रशासन व्यवस्था में राज्यों की भू मका वशेष महत्त्व होता हैं। संवैधानिक दृष्टि से राज्यों के प्रशासन के लए अनेक प्रावधान कये गये हैं, जिनमें राज्यपाल का पद भी प्रमुख हैं। राज्यपालों के द्वारा 1967 ई. तक अपनी भू मका का निर्वाह सही से कया गया कन्तु 1967 ई. के बाद व भन्न राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारों का गठन कया गया था। इसके बाद राज्यपाल पर केन्द्र के एंजेट के रूप में कार्य करने के आरोप लगाये गए। राज्यपाल पर ये आरोप सं वधान के अनुच्छेद 356 के आधार पर लगाए गये हैं। इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य में संवैघानिक संकट पैदा होने पर राज्यपाल अपनी रिपोर्ट जिसमें वह सफारिश करे क राज्य वधानसभा भंग कर दी जाए, राष्ट्रपति को भेजेंगे जिसे वह अध्ययन कर केन्द्र सरकार की सलाह पर स्वीकार या अस्वीकार कर लेता हैं। राज्यपाल के द्वारा भेजी गई रिपोर्ट को यदि स्वीकार कर लया जाता हैं तो इसके बाद सम्बन्धित राज्य की वधानसभा को भंग कर दिया जाता हैं और वहा पर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाता हैं। इस प्रकार उस राज्य का शासन राष्ट्रपति के पास आ जाता हैं जिसे वह अपने प्रतिनि ध के माध्यम से संचा लत करता हैं।

भारतीय राजव्यवस्था में अनुच्छेद 356 का कई बार दुरूपयोग कया गया हैं। जैसेः- 1977 में जब आंतरिक आपातकाल के बाद जनता दल की मोरारजी देसाई के नेतृत्त्व में सरकार बनी, तब जनता दल ने कांग्रेस शा सत 9 राज्यो में राष्ट्रपति शासन लगा दिया था। इसी तरह जब 1980 में इंदिरा गाँधी सत्ता में वापस आई तो उन्होंने भी 9 राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया। इसके पीछे मूलतः अपने वपक्षी दलों द्वारा शा सत राज्य सरकारो ं में केन्द्र द्वारा राजनीतिक बदला लेना ही कारण था।

राज्यपाल की स्थिति में गठबंधन सरकारों के काल में परिवर्तन देखा गया। अब राज्यपाल केन्द्र के एंजेट की अपेक्षा राज्य के प्रतिनि ध के रूप में देखे जाने लगें। इस परिवर्तन के लए बहुदलीय व्यवस्था भी उत्तरदायी रही हैं। जब केन्द्र सरकार में प्रधानमंत्री, मंत्रिमंड़ल अ धक शक्तिशाली नहीं रह गए और केन्द्र की शक्ति क्षीण होते ही कई राज्यपालों ने केन्द्र के निर्णयों व आदेशों को मानने से इन्कार कर दिया। 1990 के दशक में राज्यपालों ने स्वायत्ता को दिखाया। यथा- त मलनाडू के राज्यपाल 'सुरजीत संह बरनाला' ने 1990 की शुरूआत में द्र वड़ मुनेत्र कडगम की सरकार के वघटन और बिहार मंे उनके स्थानान्तरण के खलाफ त्याग-पत्र दे दिया। इसी तरह दूसरे उदाहरण 1992 में केन्द्र ने नागालैण्ड में राज्यपाल एम. एमथाॅमस को हटा दिया था, क्यों क उसने बिना केन्द्र की सलाह लए मुख्यमंत्री वामुजो की सलाह पर वधानसभा को भंग कर दिया था। इस पर राज्यपाल ने स्पष्ट रूप से अपने कृत्य को सही बताते हुए कहा क जब बहुमत प्राप्त सरकार का मुख्यमंत्री सदन के भंग की सलाह देता हैं तो वह संवैधानिक रूप से उसे मानने के लए बाध्य हैं तथा केन्द्र राज्य के रूप में अपनी इच्छा के लए दबाव ड़ाल रहा हैं, जो समस्या खड़ी कर सकता हैं। अतः निश्चित रूप से यह कहा जा सकता हैं क बहु-दलीय

गठबंधनयुक्त व्यवस्था में राज्यपाल राज्य के अध्यक्ष के रूप में अपनी भूमिका के प्रति संवेदनशील बन गये हैं।

संसद के द्वितीय सदन (राज्य सभा) की सरंचना में बदलाव

आधुनिक समय में गठबंधन सरकारों के काल में संसद के द्वितीय सदन अर्थात राज्य सभा की सरंचना में बदलाव देखा गया हैं। राज्य सभा के सदस्य राज्य व संघ केन्द्रशासित प्रदेशों के विधानसभा चुनते हैं। इसके बावजूद यह सदन न तो केन्द्र व राज्यों के बीच संघर्ष की परिषद् हैं, न ही राज्यों के अधिकारों का रक्षक न ही क्षेत्रीय मांगों की अभिव्यक्ति का सदन हैं। यह सदन दूसरे सदन (लोकसभा) की तरह ही हैं। भारतीय राजनीति में **1989** ई. के पश्चात् एक-दलीय प्रभुत्व का समय समाप्त हो गया हैं और बहु-दलीय गठबंधनयुक्त व्यवस्था का काल चल रहा हैं, जहां क्षेत्रीय दल राज्यों में अपनी शक्ति के बल पर सरकार बनाते हैं और लोकसभा की सीटें भी जीतते हैं इसलिए यह संभव नहीं हैं कि यदि किसी दल को लोकसभा में बहुमत हो तो वह राज्य सभा में पारित न हो पाए। प्रो. एम. पी. सिंह मानते हैं कि दलीय व्यवस्था में आए परिवर्तन से राज्यसभा योग्य संघीय द्वितीय सदन बन गया हैं। इस परिवर्तन को वह निम्नलिखित तर्कों से स्पष्ट करते हैं।

- राज्य सभा को लोकसभा के समान संघीय शक्तियाँ प्राप्त है बल्कि संविधान-संशोधन, किसी मुद्दे पर दोनों सदनों के गतिरोध को खत्म करने के लिए हो रही सयुक्त सत्र में अपनी राय रखने की उसके पास निषेधाधिकार शक्तियाँ हैं।
- संयुक्त सत्र में फैसला हमेशा लोकसभा के पक्ष में जाए यह हमेशा संभव नहीं। हालांकि लोकसभा के पास अधिक सदस्य संख्या हैं परन्तु जटिल गठबंधनयुक्त व्यवस्था के चलते यह संभव हैं कि संयुक्त सत्र में फैसला राज्य सभा के पक्ष में जाए।
- राज्य सभा सरकार को राज्य सूची के मुद्दे और अखिल भारतीय सेवा से सम्बन्धित कानून बनाने से रोक सकती हैं।

2003 ई. भारतीय संसद के द्वारा राज्यसभा की रचना में की पद्वति में दो प्रभावी बदलाव किये गए हैं। प्रथम-मूल संविधान मे ं व्यवस्था थी कि राज्यसभा के उम्मीदवार का नाम उस राज्य की मतदाता सूची में होना आवश्यक हैं, जिस से वह राज्यसभा का चुनाव लड़ना चाहता हैं। अब व्यवस्था की गई हैं कि राज्यसभा के उम्मीदवार के लिए उस राज्य का निवासी होना आवश्यक नहीं होगा, जिस राज्य से वह राज्यसभा का चुनाव लड़ना चाहता हैं। द्वितीय-गुप्त मतदान की व्यवस्था के कारण राज्य सभा के चुनाव में विधायक धन के प्रलोभन से प्रभावित होकर अपने मताधिकार का प्रयोग करते हुए पाए गए हैं। इस भ्रष्ट आचरण को समाप्त करने के लिए राज्यसभा के चुनाव में गुप्त मतदान के स्थान पर खुले मतदान की व्यवस्था को अपनाया गया हैं। इस प्रकार राज्यसभा की संघीय प्रासंगिकता बढ. रही हैं, जो प्रमुखतः बढते क्षेत्रीयकरण तथा राजनीतिक व्यवस्था के संघीयकरण के कारण भी हैं।

संसद के प्रभाव मे ं कमी होना व्यवस्था पकाओं के पतन के सम्बन्ध में के. सी. व्हीयर ने कहा हैं क "व्यवस्था पकाओं ने अपनी शक्तियां, कार्यकुशलता व सम्मान को बनाए रखा हो या इनमें वृद् व तक कर ली हो, ऐसा सम्भव हैं, फर भी उनका अन्य संस्थाओं से सापेक्ष रूप में इन सभी पहलुओं में पतन हुआ हैं क्यों क अन्य संस्थाओं ने अपनी शक्तियां बढाकर अपना दर्जा सुधार लया हैं।" भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में बहुदलीय गठबंधनयुक्त सरकारों के काल में संसद के प्रभाव में कमी देखी गई हैं। एक दलीय-प्रभुत्व सरकारों के काल में संसद एक प्रभावशाली संस्था के रूप में अच्छे से कार्य करती थी। संसद में व भन्न ववादों के चलते बहस होती थी, ले कन फर भी कानून पारित होते थे। वर्तमान समय में स्थिति बदल गई हैं, अब संसद में गतिरोध इतना अ धक बढ गया हैं क सदन चलने ही नहीं दिया जाता हैं। संसद में अब पूरे सत्र में कुछ घण्टे भी कार्य नहीं हो पाता, न ही बहस होती हैं, न ही पर्याप्त कानून पारित होते हैं। संसद की इस स्थिति के लए वपक्ष की जड़ता जिम्मेदार हैं और सरकारी पक्ष की जवाबदेह न बनने की प्रवृत्ति भी। इन सबके अलावा संसद में भ्रष्टाचार, सांसदों का पैसा लेकर प्रश्न पूछना, नोटों को भ्रष्टाचार के प्रमाण के रूप में सदन में उछालना आदि से संसद की स्थिति एवं प्रभाव में कमी आ गई हैं।

राज्य स्तरीय दलों का बढता महत्त्व

भारतीय राजनीति में **1968** तक लोकसभा में सदैव एक ही राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त रहा, ले कन **1969** में कांग्रेस के वभाजन के पश्चात् इंदिरा गाँधी सरकार एक अल्पमत सरकार हो गई। यह सरकार भारतीय साम्यवादी दल एवं द्रमुक के समर्थन से कुछ अन्य राजनीतिक दलों के "मुद्दों पर आधारित बनी हुई थी। यह स्थिति कुछ समय तक रही और **1971** में पांचवी लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ और सरकार का निर्माण कया।"

1980 ई. के बाद क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का महत्त्व बढे लगा क्यों क अब राष्ट्रीय दलों के प्रभाव में निरन्तर कमी होती चली जा रही थी। इसका प्रमुख कारण बहुदलीय प्रणाली में राजनीतिक दलों के सद्वान्तों व वचारधारा के प्रति प्रतिबद्वता का पतन एवं राजनीतिक अवसरवादिता, सत्ता प्राप्ति की लालसा, राजनेताओं की व्यक्तिगत महत्वकांक्षा, राष्ट्रीय दलों के प्रभावक्षेत्र में कमी, करिश्माई नेतृत्व का अभाव और क्षेत्रीय दलों का उदय आदि थे। देश के कुछ राज्यों में क्षेत्रीय दल इतने प्रभावशाली रहे हैं क उन्होने अपने दम पर सरकार बना ली। मायरन वीनर ने अपनी पुस्तक 'स्टेट पॉ लटिक्स इन इं ड़या' **(1968)** में इसका एक अध्ययन कया, जिसमें उन्होंने माना क राज्य वकास के निर्णयों के केन्द्र हैं, राज्य तुलनात्मक अध्ययन की इकाइयाँ हैं तथा दलीय व्यवस्था के नए मॉडल हैं, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती हैं।

भारतीय राजनीति में **1989** ई के बाद क्षेत्रीय राजनीतिक दल बहुत अ धक सशक्त हो गये हैं और इन दलों ने व भन्न राज्यों में सरकारें भी बनाई हैं। एक दलीय व्यवस्था की समाप्ति हुई और एक प्रकार की राजनीति का पुन र्वन्यास हुआ, जिसका का संचालन राज्यों की राजनीति के माध्यम से कया जाने लगा। इस व्यवस्था का संचालन क्षेत्रीय दलों के द्वारा कया जाता था। **1989** ई. के लोकसभा निर्वाचन के समय

से ही राष्ट्रीय राजनीति में प्रादे शक दलों क भू मका महत्त्वपूर्ण बन गई हैं। केन्द्र में सं वद या गठबंधन सरकारों के गठन करने तथा उनकी अपदस्थगी में उनकी स्थिति अहम् बन गई है। **1991, 1996** तथा **1998** ई. में केन्द्र में अस्तित्व में आई। केन्द्र सरकारों में से, केवल **1991** ई. में श्री पी. वी. नर संहराव के नेतृत्व वाली कांग्रेस (ई) की एकदलीय सरकार को इसका अपवाद माना जा सकता हैं।

राज्य राजनीति का बढता प्रभाव:

आधुनिक भारतीय राजनीति क एक व शष्टता यह रही हैं, अब राज्यों क राजनीति का प्रभाव राष्ट्रीय राजनीति पर देखा जा सकता हैं। कई बार ऐसी घटनाएँ घटित हुई हैं जिनके आधार पर स्पष्टतौर पर कहा जा क राज्य राजनीति राष्ट्रीय राजनीति को प्रभा वत करती है ं। वर्तमान में राष्ट्रीय स्तर पर बनने वाली सरकारों का निर्धारण भी राज्यों की राजनीति से ही होने लगा हैं, वशेषरूप बड़े राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, बिहार आदि। इन राज्यों में जिस दल का प्रभाव अ धक होता हैं। राष्ट्रीय स्तर पर उसी दल की सरकार बनती हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय राजनीति में राज्य सरकारों का प्रभाव बढता जा रहा हैं।

द् वतीय लोकतांत्रिक जन-उफान:-

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में लोकतांत्रिक परिवर्तन को दर्शाने के लए योगेन्द्र यादव ने 'द् वतीय लोकतांत्रिक जन-उफान' पद का प्रयोग कया हैं। वर्तमान में बदलती दलीय व्यवस्था ने लोकतंत्र को सशक्त बनाया हैं। लोकतांत्रिक जन उफान का अ भप्राय है क आम जनता की लोकतंत्र के प्रति आस्था व स क्रयता का अत्य धक होना। प्रथम लोकतांत्रिक जन-उफान **1960** के दशक में भारतीय राजनीति में दिखाई देता हैं, जब मतदान प्रतिशत **60** प्रतिशत के पास पहुँच गया। कांग्रेस ने सामाजिक अनुक्रम में नीचे आने वाली जातियों को अपने दल व राजनीति में उन्हें स्थान दिलाया। इन जातियों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई। चुनाव में प्रत्या शयों की संख्या बढती चली गई। कांग्रेस के प्रभुत्व के प्रति राज्यों में वकल्प खड़े कये जाने लगें। आम जनता अपने अ धकारों का प्रयोग करने लगे। इसे ही योग ेन्द्र यादव ने प्रथम लोकतांत्रिक जन-उफान की संज्ञा दी हैं। आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था में द् वतीय लोकतांत्रिक जन-उफान **20**वीं सदी के अंतिम दशक में देखा गया हैं। जहां **1952** में प्रति सीट प्रत्या शयों का औसत **4.7** प्रतिशत था, वहीं **1993-1995** में **14.7** प्रतिशत हो गया। इस समय समाज के हर वं चत वर्ग-द लत, अन्य पछड़ा वर्ग, अल्प-स ंख्यक, आदिवासी वर्ग, महिलाओं अर्थात् बहुजन का उभार इस दौर तक हो गया। समाज के ये सभी वर्ग राजनीति में सहभा गता करने लगे, चुनाव लड़ने-जीतने लगे। कई राज्यों में वह सत्ता प्राप्त करने में भी सफल रहें। योगेन्द्र यादव मानते हैं क इस काल में राज्य राजनीति में द लत-बहुजन वर्ग ने राष्ट्रीय राजनीति से ज्यादा चुनावी सहभा गता दर्ज करायी थी।

द् वतीय लोकतांत्रिक जन-उफान के पीछे पछड़ी जातियों का बढता मता धकार व मत-प्रतिशत था। अल्प-संख्यक वर्ग की चुनाव में सहभा गता कई क्षेत्रों में पहले की अपेक्षा अ धक बढ गई। ग्रामीण क्षेत्रों में भी शहरी क्षेत्रों से ज्यादा चुनावी राजनीतिक सहभा गता देखी गई। आदिवा सयों ने भी मतदान में स क्रय भागीदारी निभाई। व भन्न पछड़े क्षेत्रों ने वक सत क्षेत्रों से अ धक मतदान कया। इसी प्रकार पुरूषों की

अपेक्षा महिलाओं ने भी मतदान के प्रति अ धक स क्रयता दिखाई। परिणामतः इस काल में मतदान प्रतिशत में आश्चर्यजनक वृद् व देखी गई। जन-सामान्य में राजनीति के प्रति इस जागरूकता का एक कारण पंचायतों में चुनावी सहभा गता को भी माना जा सकता हैं। ग्रामीण क्षेत्र को अ धक व अच्छा राजनीतिक प्रतिनि धत्व भी मला। 1990 से पहले की अपेक्षा द लत, आदिवासी, अन्य पछड़ा वर्ग अर्थात् बहुजन वर्ग ज्यादा मतदान करने लगे हैं। इस लए भारत का पछड़ा वर्ग, राजनीतिक रूप से स क्रय हुआ हैं। शक्षा के प्रसार व क्षेत्रीय दलों ने लोकतांत्रिक रस आम जनता तक पहुंचाया हैं। इसे ही दूसरा लोकतांत्रिक जन-उफान कहा गया हैं, जो लगातार चल रहा हैं।

भारत का अर्ध-संघ से महासंघ की ओर रूझान:- भारतीय राजनीति में 1989 ई. तक एक दलीय प्रभुत्व का दौर प्रच लत रहा था। इसी कारण संसदीय तत्त्वों का प्रभाव राजनीति में बना रहा। यद्य प इस काल में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बना रहा कन्तु वर्तमान के तरह क्षेत्रीय दल अत्य धक महत्त्व नहीं रखते थे। यही कारण था क राज्य राजनीति राष्ट्रीय राजनीति पर हावी नहीं थी। इसके साथ ही राज्य स्वायत्तता और क्षेत्रीय आकांक्षाओं जैसे मुद्दे गौण बने रहे। 1989 ई. के पश्चात् कुछ नए क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का शक्तिशाली दलों के रूप में उदय हुआ तथा पुराने क्षेत्रीय दलों ने भी अपनी शक्ति ओर प्रभाव में वृद् व कर ली थी। क्षेत्रीय दलों की बढ ती शक्ति का प्रमाण उनके द्वारा कये गये कार्यो के रूप में देखा जा सकता हैं। जैसे-कुछ राज्यों में क्षेत्रीय दल अकेले बहुमत प्राप्त करने की स्थिति में पहुँच जाते हैं इन दलों में असम गण परिषद-असम में, तेलुगुदेशम पार्टी-आंध्र प्रदेश में, इसी प्रकार द्र वड़ मुनेत्र कजगम व अन्ना द्र वड़ मुनेत्र कजगम-त मलनाडू में प्रभाव स्था पत कर पाने में सफल हो जाते हैं। पजांब राज्य में अकाली दल ने आनंदपुर साहिब का प्रस्ताव रखता हैं। क्षेत्रीय दलों के इन कार्यो ने राष्ट्रीय राजनीति में एकदलीय प्रभुत्व के स्थान पर बहुदलीय गठबंधन के युग को प्रारम्भ कर दिया, जो क दलीय व्यवस्था का भारतीय राजनीति पर प्रभाव के रूप में देखा जा सकता हैं।

न्यायिक स क्रयता में वृ द्ध होना:-

न्यायिक स क्रयता नागरिकों के अ धकारों के संरक्षण और समाज में न्याय को ब ावा देने में न्यायपा लका द्वारा निभाई गई स क्रय भू मका को दर्शाती हैं। दूसरे शब्दों में, इसका तात्पर्य न्यायपा लका द्वारा सरकार के अन्य दो अंगो (वधायिका और कार्यपा लका) को उनके संवैधानिक कर्तव्यों के निर्वहन के लए बाध्य करने की मुखर भू मका से हैं। भारत मंे, न्यायिक स क्रयता के सद्वान्त को 1970 के दशक के मध्य में पेश कया गया था। न्यायमूर्ति वी. आर. कृष्णा अययर, न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती, न्यायमूर्ति ओ. चन्नाप्प रेड्डी और न्यायमूर्ति डी. ए. देसाई ने देश में न्यायिक स क्रयता की नींव रखी। भारतीय राजनीति में दलीय व्यवस्था के बदलते स्वरूप के कारण न्यायिक स क्रयता में वृद् व हुई हैं। भारतीय प्रशासन व्यवस्था में व्यवस्था पका, कार्यपा लका और न्यायपा लका में शक्तियों का वभाजन कया गया हैं परन्तु जब तक एक दलीय प्रभुत्व का प्रचलन रहा, तब तक संसद ही प्रभावशाली संस्था रही थी। यद्य प संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर न्यायपा लका संसद के बनाए कानूनों की समीक्षा कर उन्हें

अवैध घो षत कर सकती हैं कन्तु ऐसी स्थिति में संसद सं वधान में संशोधन कर कानूनों को वैध घो षत कर सकती हैं।

1989 ई. के बाद होने वाले दलीय परिवर्तनों के चलते गठबंधन सरकारों की स्थापना होने लगी। इससे संसद कमजोर होती चली गयी, जिससे संसद के कार्यो में न्यायपा लका का हस्तक्षेप बढ ने लगा। न्यायपा लका ने गरीबों के कल्याण से जुडे कई निर्णय दिए। इनमें ए शयाड़ खेल केस, भागलपुर जेल कांड, वशाखा केस, नर्सरी एड मशन केस आदि प्रमुख हैं। एस. आर. बोम्मई वाद का निर्णय भी इसी काल में आया, जिसमें न्यायपा लका ने राष्ट्रपति शासन को लगाने की संवैधानिकता की समीक्षा करने का निर्णय न्यायपा लका को दे दिया, जब क एक दलीय व्यवस्था के काल में न्यायपा लका इसे मना कर चुकी थी। मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम, भोजन के अ धकार से जुडे अंतरिम आदेश सर्वोच्च न्यायलय ने इसी दौर में जारी कए। इस प्रकार न्यायिक स क्रयता में वृद् व होना भी दलीय व्यवस्था के परिवर्तन के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता हैं। इस प्रकार दलीय व्यवस्था में होने वाले बदलावों ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को प्रभा वत कया हैं।

उपसंहार

राजनीतिक दलों के बदलते फैशन से लोकतांत्रिक व्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा है। भारत में, राजनीतिक दलों का बोर्ड भर में नीति निर्माण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। सरकार की सभी शाखाएं कैसे काम करती हैं, इसमें बदलाव हुए हैं, ऐसे बदलाव जिन्हें कम से कम आं शक रूप से कुछ राजनीतिक दल वचारधाराओं के उद्भव के लए वापस खोजा जा सकता है। यही कारण है क आज की सरकार में सभी स्तरों पर नए राजनीतिक दल के पैटर्न इतने स्पष्ट हो गए हैं। एक लोकतंत्र अपने राजनीतिक दलों पर बहुत अ धक निर्भर करता है। राजनीतिक दलों के बिना, एक कार्यशील लोकतंत्र अकल्पनीय है। संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था दलीय व्यवस्था से प्रभा वत होती है। यही कारण है क कसी राष्ट्र के शासन को उसके राजनीतिक दलों द्वारा लागू की गई नीतियों और तरीकों से प्रभा वत माना जा सकता है। भारत सरकार स्पष्ट रूप से राजनीतिक दलों के प्रभाव को दिखाती है। एकदलीय शासन का भारतीय राजनीति पर इसके प्रारं भक वर्षों में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। एकदलीय प्रणाली ने सरकार के अंतर्निहित संघवादी आवेगों को नकाबपोश कर दिया। पार्टी प्रणाली में परिवर्तन से शासन प्रणाली में महत्वपूर्ण वकास हुआ है, जिस पर पहले प्रधान मंत्री और उनके मंत्रिमंडल का प्रभुत्व था।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. बालेन्द्र संह, भारतीय राजव्यवस्था में सांझा सरकारें, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, 340 चैड़ा रास्ता, जयपुर 2012, पृ. सं. 44
2. जेम्स मैनर, द प्र सडेन्सी 2005, देवेश कपूर और प्रताप भानू मेहता, पब्लिक इन्सटियूट इन इं डया, नई दिल्लीः/ आक्सफोर्ड यूनिवर सटी प्रेस पृ 106

3. एम. लक्ष्मीकांत, भारत की राजव्यवस्था, एमसी ग्रो हिल एजुकेशन (इं ड़या) प्राइवेट ल. नई दिल्ली 2014, पेज. स ं16.7
4. एम. पी. संह एण्ड रेखा सक्स ेना, इं डयन पा ॅ लटिक्स: संवैधानिक आधार और संस्थागत कार्य, 2011, नई दिल्ली, पृ. सं. 102-103
5. डॉ. पुखराज जैन, भारतीय राज-व्यवस्था, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ. सं. 162
6. डॉ. पुखराज जैन, राजनीति वज्ञान के मूल आधार, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ. स ं. 209
7. बी. एल. फ ड़या, "भारतीय शासन एवं राजनीति", साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2011, पृ. सं. 576
8. डॉ. बालेन्द्र संह, भारतीय राजव्यवस्था में सांझा सरकारें, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, 340 चैड़ा रास्ता, जयपुर 2012, पृ. सं. 101
9. प्रो. धर्मचन्द जैन, भारतीय शासन और राजनीति (भाग-2), आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, 340, चैड़ा रास्ता, जयपुर 2014, पृ. सं.